

मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर उत्तर रामचरितम् नाटक की समीक्षा

स्वीटी कुमारी¹, डॉ. सुमन लता पाल²

¹शोधार्थिनी, संस्कृत विभाग, भदावर विद्या मंदिर (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय, बाह (आगरा)
²निर्देशिका, प्रोफेसर संस्कृत विभाग, भदावर विद्या मंदिर (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय, बाह (आगरा)

सार

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भवभूति द्वारा रचित [उत्तररामचरितम्] नाटक मानवीय संवेदनाओं, आंतरिक द्वंद्व और भावनाओं का एक उत्कृष्ट दस्तावेज है। कवि का मूल लक्ष्य 'लोकानां हृदयानि कम्पयितुमेव काव्यम्' (काव्य का उद्देश्य हृदय को झकझोरना है) रहा है, जिसे उन्होंने पात्रों की मानसिक उथल-पुथल के माध्यम से चरितार्थ किया है।

परिचय

मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर इस नाटक की समीक्षा निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत की जा सकती है: 1. आंतरिक द्वंद्व और कर्तव्य बनाम प्रेम (Internal Conflict): नाटक में राम के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उनके 'राजा' (राजधर्म) और 'पति' (व्यक्तिगत प्रेम) के बीच के अंतर्द्वंद्व को उजागर करता है। लोक-अपवाद (समाज के दबाव) के कारण सीता का त्याग राम की इच्छा नहीं, बल्कि एक शासक की विवशता थी। त्याग के बाद राम के मन में अपराध-बोध (Guilt) और पश्चाताप की भावना निरंतर बनी रहती है, जो उनके [उत्तररामचरितम्] नाटक के तीसरे अंक में स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती है। 2. वियोग और अवसाद की चरम अवस्था (Separation and Melancholy): मनोविज्ञान के अनुसार, वियोग की अवस्था में व्यक्ति पुरानी स्मृतियों (Flashbacks) में जीने लगता है। तीसरे अंक (छायांक) में जब राम पंचवटी लौटते हैं, तो सीता की स्मृतियों से वे इतने भाव-विह्वल हो जाते हैं कि बार-बार मूर्छित हो जाते हैं। यहाँ राम का व्यवहार एक विक्षिप्त या गहरे अवसाद (Depression) से ग्रस्त प्रेमी जैसा प्रतीत होता है, जो उनकी संवेदनशीलता और कोमल हृदय को दर्शाता है। 3. अवचेतन मन की अभिव्यक्ति और स्पर्श चिकित्सा (Subconscious & Tactile Therapy): तीसरे अंक में 'छाया-सीता' का प्रवेश अत्यंत उच्च कोटि का मनोवैज्ञानिक प्रयोग है। राम सीता के बिना जी रहे हैं, लेकिन उनका अवचेतन मन उन्हें अपने पास महसूस करता है। भवभूति ने यहाँ मनोवैज्ञानिक सत्य (Tactile Sensation) को प्रस्तुत किया है कि प्रियजन के स्पर्श का अहसास मानसिक आघात से उबरने (Healing Trauma) में संजीवनी का काम करता है। सीता के हाथों के स्पर्श से ही राम होश में आते हैं। 4. सीता के चरित्र में धैर्य और मानसिक दृढ़ता (Resilience): सीता को एक सबल और आत्म-सम्मान वाली स्त्री के रूप में दिखाया गया है। यद्यपि वे परित्याग से आहत होती हैं (विशेषकर जब राम स्वर्ण-सीता के साथ यज्ञ करते हैं), उनके मन में राम के प्रति कटुता नहीं पनपती। उनका प्रेम त्याग से नष्ट नहीं होता, बल्कि एक आदर्श और परिपक्व स्नेह में बदल जाता है। 5. करुण रस की मनोवैज्ञानिक प्रधानता (Karuna Rasa): भवभूति का मानना था कि संसार में मूल रूप से केवल एक ही रस है - 'करुण रस', और बाकी सभी रस इसी के अलग-अलग रूप (प्रतिबिंब) हैं। यह नाटक विप्रलंब श्रृंगार (वियोग) और करुणा का ऐसा मनोवैज्ञानिक ताना-बाना बुनता है जहाँ नायक-नायिका के हृदय का रुदन पाठक या दर्शक के मन को द्रवित कर देता है। 6. बाल-मनोविज्ञान (Child

Psychology): लव और कुश के चरित्र-चित्रण में भवभूति ने बाल-मनोविज्ञान का अद्भुत परिचय दिया है। आश्रम में पले-बढ़े होने के बावजूद उनके क्षत्रिय संस्कार और स्वाभिमान (Self-esteem) स्वतः प्रकट होते हैं। राम, जो अपने बेटों से अनभिज्ञ हैं, उनके प्रति एक सहज स्नेह और खिंचाव (Paternal instinct) महसूस करते हैं।

विचार-विमर्श

नटराज शिव के 'ताण्डव' और भगवती पार्वती के 'लास्य' नृत्य से विश्वरूपी रंग-मंच पर जिस नाट्यविधा का प्रवर्तन हुआ, उसमें ब्रह्मानन्दसहोदर अनिर्वचनीय रसानुभूति का मनोविज्ञान से गहरा सम्बन्ध है। नाटक में अलंकार-योजना, रस-निष्पत्ति, संवाद, बिम्ब-विधान आदि में मनोविज्ञान स्पष्ट रूप से निहित होता है। कवि-प्रसूत भाव भाषिक स्वरूप में रस, अलंकार, संवाद आदि तत्वों को समाहित करके नाटक के पात्रों के मनोविज्ञान को पर्यवेक्षकों पर इस प्रकार आरोपित कर देता है कि कवि की मनोवैज्ञानिकता नाटकीय पात्रों के मनोविज्ञान के रूप में समग्र नाटक के मनोवैज्ञानिक तत्वों से सहृदयों को चमत्कृत कर भाव-गाम्भीर्य से ओत-प्रोत कर देता है।

इसी भाव-गाम्भीर्य और अनिर्वचनीय रस अनुभूति को सबसे महत्वपूर्ण मानकर संस्कृत नाटकों में अपना विशेष महत्व रखने वाले महाकवि भवभूति का 'उत्तररामचरितम्' नाटक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। महाकवि भवभूति की सात अंकों की प्रौढ़ कृति 'उत्तररामचरितम्' उनका सर्वस्व है। कहा भी गया है - "उत्तररामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।"

भवभूति, संस्कृत के महान कवि एवं सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। इनके नाटक, कालिदास के नाटकों के समतुल्य माने जाते हैं। भवभूति ने अपने सम्बन्ध में 'महावीरचरितम्' की प्रस्तावना में लिखा है। ये विदर्भ देश के 'पद्मपुर' नामक स्थान के निवासी श्री भट्टगोपाल के पोते थे। इनके पिता का नाम 'नीलकण्ठ' और माता का नाम 'जतुकर्णी' था। इन्होंने अपना उल्लेख 'भट्टश्रीकण्ठ पछलांछनी भवभूतिर्नाम' से किया है। इनके गुरु का नाम 'ज्ञाननिधि' था। 'मालतीमाधवम्' की पुरातन प्रति में प्राप्त 'भट्टश्रीकुमारिलशिष्येण विरचितमिदं प्रकरणम्' तथा 'भट्टश्रीकुमारिल प्रसादात्प्राप्त वाग्वैभवस्य उम्बेकाचार्यस्येयं कृति' इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि श्रीकण्ठ के गुरु कुमारिल थे जिनका 'ज्ञाननिधि' भी नाम था और भवभूति ही मीमांसक 'उम्बेकाचार्य' थे जिनका उल्लेख दर्शन ग्रंथों में प्राप्त होता है और इन्होंने कुमारिल के 'श्लोकवार्तिक' की टीका भी की थी। संस्कृत साहित्य में महान् दार्शनिक और नाटककार होने के नाते ये अद्वितीय हैं। पाण्डित्य और विदग्धता का यह अनुपम योग संस्कृत साहित्य में दुर्लभ है। राजतरंगिणी के उल्लेख से इनका समय एक प्रकार से निश्चित सा है। ये कान्यकुब्ज के नरेश यशोवर्मन के सभापंडित थे, जिन्हें ललितादित्य ने पराजित किया था। 'गण्डवहो' के निर्माता वाक्यपतिराज भी उसी दरबार में थे। अतः इनका समय आठवीं शताब्दी का पूर्वार्ध सिद्ध होता है।

महाकवि भवभूति के महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम् - ये तीन रूपक प्रसिद्ध हैं। सात अंकों के नाटक महावीरचरितम् में राम-सीता विवाह से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की घटनाओं के साथ राम के महावीरत्व को मुख्य रूपेण वर्णन का विषय बनाया गया है, तो दश अंकों के प्रकरण मालतीमाधवम् में मालती और माधव की प्रणय कथा का वर्णन उपलब्ध होता है। वस्तु, नेता, रस की दृष्टि से उपर्युक्त दोनों रचनाओं में महाकवि भवभूति ने परम्परा का ही निर्वहन किया है, लेकिन उत्तररामचरितम् में उन्होंने अनेक विलक्षण प्रयोग कर परम्परा की बेड़ियों से स्वयं को मुक्त कर नये रूप में उपस्थित करने का प्रयास किया है और उन्हें अपूर्व सफलता भी मिली है। परम्परावादी शृंगार तथा वीर रस को ही अंगीरूपेण स्थान देने के आग्रही रहे हैं जबकि इन्होंने उत्तररामचरितम् में करुण रस को अंगीरूपेण स्वीकार करते हुए स्पष्ट उद्घोष किया है कि - "एको रसः करुण एव।" साथ ही करुण

रस का वर्णन इतना प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है कि विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से इसे मान्यता प्रदान करते हुए कहा कि - "कारुण्यं भवभूतेरेव तनुते।"

स्त्री जाति के प्रति भी भवभूति की दृष्टि मान्य परम्परा से भिन्न है और उन्होंने उसके प्रचलित भोग्या रूप वर्णन के स्थान पर पूज्या रूप से उपस्थित कर उसकी हृदय की पवित्रता को रूपान्वित करने में अपना सन्निवेश दिखलाया है। संस्कृत कवियों का प्रकृति के बहिर्जगत् के मनोरम दृश्य का वर्णन अभीष्ट रहा है, लेकिन भवभूति ने प्रकृति के मनोहारी पक्ष के साथ ही साथ भयानक और वीभत्स पक्ष को भी असाधारण कौशल के साथ निबद्ध किया है।

विषयों के प्रस्तुतीकरण में अपनी विलक्षणता का परिचय देकर भवभूति ने मानव मन की अतल गहराईयों में भी उतरकर उसके विश्लेषण का जो स्तुत्य प्रयास किया है, वह अत्यन्त दुष्प्राप्य है। दाम्पत्य जीवन की पराकाष्ठा दम्पती का परस्पर तादात्म्यीकरण है और यही भवभूति को भी अभीष्ट है, जिसे उन्होंने राम-सीता के परस्पर अनुराग के द्वारा व्यक्त किया है, लेकिन सीता निर्वासन के पश्चात् सीता के मन की राम के प्रति तटस्थता और तत्पश्चात् दण्डकारण्य में राम की हृदय विदारक विह्वलता का छायारूपिणी सीता के द्वारा प्रत्यक्षीकरण करा कर उन्होंने जिस प्रकार एक पीडिता स्त्री के मनोमालिन्य का उदात्तीकरण दिखाया है, यह कोई मानव मन का पारखी ही कर सकता है। चित्त का उदात्तीकरण ही उन्मुखता की ओर प्रवृत्त कर सकता है और तब तादात्म्यीकरण सम्भव है जो दाम्पत्य प्रेम की मूल आधारशिला है।

महाकवि भवभूति ने सीता के चित्त के उन्मुखीकरण के माध्यम से मानव मन की सहज अवस्थाओं का बड़ी सूक्ष्मता से क्रमिक उत्कर्ष दिखाया है। यह सत्य है कि इन प्रसंगों के वर्णन से कथा प्रवाह अवरूद्ध सा लगता है, लेकिन इसके द्वारा राम-सीता के अन्तस् के तादात्म्यीकरण की लम्बी दूरी भवभूति तय कर लेते हैं और यही नाटककार का उत्तररामचरितम् में अभीष्ट है। सीता और राम के मानसिक स्थिति में आये उतार-चढ़ाव को भवभूति ने अत्यन्त कुशलता से प्रकट किया है।

जैसा कि ज्ञात है कि नाट्य शास्त्रीय ग्रंथों में आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य अभिनय की चर्चा मिलती है। नाटकों में कला सम्बन्धी किसी भी पक्ष का वर्णन, भाषा, अलंकार, संगीत, नृत्य चित्रकला, रंगसज्जा, स्थापत्य, मूर्तिकला आदि का एक स्थान पर वर्णन नाट्य शास्त्र में ही मिल जाता है।

"रसाभावाहाभिनयाधर्मवृत्तिप्रवृत्तयः। सिद्धिः स्वरास्तथा तोद्यं गानं रङ्गश्चसंग्रहः॥"

भरत के अनुसार एकादश सिद्धांत मिलकर नाटक की प्रकृति का निर्माण करते हैं। इसमें प्रथम सिद्धांत राशि है शेष भाव से रंग तक सभी रस उत्पत्ति के साधक माने गए हैं।

परिणाम

पंचम वेद की संज्ञा से विभूषित कला के उत्कृष्टतम रूप नाटक का स्रष्टा निश्चय ही विभिन्न विशेषताओं से युक्त होता है जो उसकी लेखिनी से प्रतिभाषित होता है। इस परिप्रेक्ष्य में भवभूति सुसंस्कृत साहित्य मर्मज्ञ व अनुशासित हैं। वह सार्वदेशिक व सार्वकालिक सूक्तियों के उद्गाता ही नहीं अनिर्वचनीय आनन्द के प्रदाता भी हैं। भवभूति का अनुपम वैशिष्ट्य है कि वह मानवीय मूल्यों के सफल प्रस्तोता हैं। वैयक्तिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, भौतिक, राजनैतिक जीवन मूल्यों के साथ ही जनकल्याण परक तथा प्रेमपरक जीवनमूल्यों की बड़ी सहजता से प्रस्तुत करते हैं। भवभूति ने शाश्वत जीवन मूल्यों यथा- सत्य, अहिंसा, आदर, विनम्रता, अतिथि के

प्रति श्रद्धा, शिष्टवाणी, कृतज्ञता, पर्यावरण बोध इत्यादि का सम्यक् उपास्थापन अपनी कृतियों करते हुए अपने कवित्व धर्म का सम्यक् निर्वहण किया है। वास्तव में भवभूति के द्वारा उपस्थापित जीवनमूल्य उनके व्यक्तित्व तथा समसामयिक परिस्थितियों से निर्मित हैं। उनकी कृतियों में संस्कारों की स्वीकृति है तो सारहीनता के विरुद्ध अस्वीकृति भी दिखाई देती है। वर्तमान काल में भी भवभूति के जीवन मूल्य प्रासंगिक हैं।

रूपक आनन्द से युक्त होते हैं। इसका लक्ष्य सहृदय को अलौकिक आनन्द रूप रस का आस्वादन कराना है। नाटक से केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती अपितु ब्रह्मानन्द सहोदर अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति भी होती है। नाट्य विधा और मनोविज्ञान का अन्तःसम्बन्ध ज्ञात करने के लिए नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के पीछे का मनोविज्ञान समझना जरूरी है।

मनोविज्ञान में भाव की प्रधानता होती है। कथानक के भेद, पंच अर्थप्रकृतियाँ, पंच अवस्थाएँ, पंच सन्धियाँ इनका वस्तु के अंतर्गत विवेचन होता है। वस्तु और बिम्ब विधान के अन्तर्गत मनोविज्ञान के तत्व अन्वेषित किये गये हैं। संवाद के अन्तर्गत प्रकाश, स्वगत, आकाशभाषित, विष्कम्भक, अपवारित और जनान्तिक का विवरण है। इसके बाद नेता अर्थात् नायक और नायिका का सभेद विश्लेषण किया गया है। नायक एवं नायिका के सहायकों का मित्र एवं विदूषक आदि के रूप में विवेचन प्राप्त होता है। विदूषक रहित नाटक में मनोविज्ञान खासकर मनोरंजक संवाद को ढूँढना रुचिकर रहा। नाटक के ध्वनि और रस का विश्लेषण मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। रस सिद्धांत के विवेचनकारों की चिन्तन शैली भी मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लोक के प्रसंग में स्थायीभाव, सुखदुःखमोहात्मक है लेकिन नाटक में काल्पनिक अनुभव प्रत्यक्ष के समान होने पर लोक के सत्य से विलक्षण है। अतएव सहृदय के मनोविज्ञान को भी देखा गया है क्योंकि -"करुणादावपि रसे जायते यत् परं सुखम्।

सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्॥" नाटक के ध्वनि और रस का विश्लेषण मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लोक के प्रसंग में स्थायीभाव सुख-दुखरूपात्मक है लेकिन नाटक में काल्पनिक अनुभव प्रत्यक्ष के समान होने पर भी लोक के सत्य से विलक्षण है। इसलिए नाटक के माध्यम से सहृदय सामाजिक को स्पन्दित करने में समर्थ रस का भी मनोविज्ञान के सम्बन्ध को भी देखा गया है और इस विषय पर भी संक्षिप्त चर्चा की गई है। "मन एव मनुष्याणां कारणं मोक्षबन्धयोः। बन्धाय विषयासक्तं मुक्तये निर्विषयं स्मृतम्॥" उपनिषद् के इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य के बन्धन या अनुरक्ति और मोक्ष या रस प्राप्ति का कारण मन ही है। अतः मन के विज्ञान का सम्बन्ध मनुष्य की हर क्रिया से है। नाट्य के प्राङ्गण में नाटककार के मनोवैज्ञानिक स्थिति का निरूपण पात्रों के संवाद एवं चरित्र के द्वारा किया जाता है। इसलिए नाट्य के अंतर्गत विद्यमान मनोवैज्ञानिक तत्व का विश्लेषण नाटक एवं नाटककार दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है। उदाहरणार्थ - भवभूति के उत्तररामचरितम् में स्त्री विषयक मनोविज्ञान के रूप में प्रथम अंक के इस पद्य में यह वचन प्राप्त होता है - "यथास्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।" यहाँ समाज में स्त्री की पवित्रता विषयक मनोविज्ञान का निदर्शन है। चिरकाल से वर्तमान तक यह सामाजिक सोच और मनोविज्ञान का एक ऐसा पक्ष है कि नारी चरित्र को मापने का यही एक पैमाना सा प्रतीत होता है।

नाटक के प्रारम्भ में ही नट पूर्णगर्भ सीता को छोड़कर यज्ञ में गए हुए गुरुजनों की बात करता है। पूर्णगर्भ सीता की देखरेख की जिम्मेदारी युवा राम पर छोड़कर पुत्री और जामाता के यज्ञ को विशेष महत्व देना सामाजिक मनोदशा को दर्शाता है कि किसी भी परिस्थिति में पुत्री और जामाता का विशेष स्थान है। भारतीय समाज में यह परिदृश्य आज भी देखने को मिलता है। नाटककार सार्वकालिक स्थिति की प्रतीति कराते हुए कहते कि अग्नि द्वारा सीता की शुद्धि का प्रमाण दे दिए जाने पर भी लोग उस विषय में शंका कर रहा है -

"देव्यामपिहिवैदेह्यां सापवादो यतो जनः। रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः॥"

यहाँ स्त्री पवित्रता विषयक मानसिकता या मनोविज्ञान का निरूपण विचारणीय है। "लोकापवाद यदि श्रीराम तक पहुँचेगा तो श्रीराम को बहुत कष्ट होगा" - इस मानवीय स्वभाव को ध्यान में रखकर ही भवभूति ने शुभ चिंतक के रूप में नट के द्वारा कहलाया है - "सर्वथा ऋषयो देवताश्च श्रेयो विधास्यन्ति।" यह शुभकामना शुभचिन्तक की मनोदशा को दर्शाता है। शुभचिन्तक सदैव प्रिय जनों की हित की कामना करते हैं तथा संकट को टालने के लिए देवताओं से प्रार्थना करते हैं।

जनक जी जब मिथिला वापस चले जाते हैं तब पुत्री सीता की मनःस्थिति का निदर्शन होता है। स्त्री मनोविज्ञान के इस पक्ष भी भवभूति ने विचार किया है। यहाँ सीता का कथन है - संतापकारिणो बंधुजनविप्रयोगा भवन्ति। अर्थात् प्रिय जनों का वियोग संतापकारिणी होता है। ऋष्यशृंग के आश्रम से अष्टावक्र अयोध्या आकर सीता को कुल गुरु वशिष्ठ का संदेश देते हैं कि तुम सूर्य और वशिष्ठ जैसे गुरु वाले कुल की कुलवधू हो। यहाँ उच्चकुल का एहसास कराना मानव मनोविज्ञान के उस शिक्षण पक्ष को दिखलाता है कि कुल के मर्यादा के अनुकूल उचित आचरण करना आवश्यक है। श्रीराम के कुलगुरु वशिष्ठ और सूर्य धैर्य और दृढ़ता के प्रतीक हैं। इसलिए सीता को सांकेतिक रूप में विपरीत परिस्थिति में भी धैर्य मर्यादा और श्रेष्ठ आचरण का संकेत यहाँ किया गया है। सर्वज्ञ त्रिकालद्रष्टा ज्ञाता ऋषि का केवल "वीरप्रसवा भूयाः" कहकर सीता को आशीर्वाद देना तथा सुख प्रसन्नता आदि का आशीर्वाद नहीं देना भी उस व्यक्ति के मन को बतलाता है कि सत्य जानते हुए व्यक्ति कितना असमर्थ हो जाता है ! अपने मनोगत को गर्भवती सीता से स्पष्ट कह भी नहीं पाता है। पितृतुल्य ऋषि "किमन्यदाशामहे" कह कर ही स्वयं को रोक लेते हैं। परिस्थिति को ध्यान में रखकर संतुलित और सकारात्मक वक्तव्य से आशीर्वाद देना ऋषि के कल्याणकारी स्वभाव को दर्शाता है। ऋषि के मनोविज्ञान को प्रकट करता है। अनुकूल वचनों से संतुष्ट करने की रीति समाज में सर्वत्र दर्शनीय है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि महाकवि भवभूति के नाटक में मनोविज्ञान के तत्त्व प्रचूर मात्रा में हैं।

मनोविज्ञान न केवल मानव व्यवहार का अध्ययन करता है अपितु मानव व्यवहार को उद्दीप्त करने वाले विभिन्न तत्वों का भी अध्ययन करता है। मानव व्यवहार को विभिन्न तत्व प्रभावित करते हैं। इस दृष्टि से मनोविज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वस्तुतः पाश्चात्य मनोविज्ञान ने हमें पशु-प्रवृत्तियों का गुलाम बनाकर स्वच्छन्द जीवन जीने, अनैतिक आचरण करने के लिए खुली छूट दे दी है। इस पर अंकुश लगाने व जीवन को सही ढंग से जीने का शिक्षण भारतीय प्राच्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति मातृ शक्ति के प्रति श्रद्धाभाव रखने वाली है और "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" यह उक्ति इसका प्रमाण है। वस्तुतः उत्तररामचरितम् में सीता पीडिता पात्रा के रूप में चित्रित की गयी है। यही कारण है कि महाकवि भवभूति ने इस नाटक में अपने कवित्व का पूरा उपयोग राम के प्रति तटस्थ हृदय बनी सीता के चित्त के उन्नयन के लिए किया है। इस क्रम में सीता द्वारा वर्धित पादप और हस्ती शावक जैसे दो प्रतीकों का भी उपयोग किया गया है। तथ्य यही है कि पीडितजन के प्रति समाज की विशेष जिम्मेदारी बनती है। यह उन्हें अपनी प्रकृति में स्थित होने के निमित्त बल प्रदान करता है। वर्तमान की इस सदी में जहाँ विद्रूप वैभव का शिकार होकर सामान्य जन उपेक्षित महसूस कर रहा है, पीडिता सीता के प्रति भवभूति की यह दृष्टि सामान्य जनमानस के उद्वेलित चित्त को शीतलता प्रदान करता है।

संदर्भ

1. भवभूति, डॉ. वासुदेव विष्णु मिराशी, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेअ, दिल्ली प्रथम संस्करण 1972 ईस्वी
2. भवभूति के नाटक, डॉ. बृज बल्लभ शर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1973
3. भवभूति और उनकी नाट्यकला, डॉ. अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 1969
4. महाकविभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम्, सम्पादक डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी संस्करण तृतीय, 2014 ईस्वी
5. महाकविभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम्, सम्पादक जनार्दनशास्त्री पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास नईदिल्ली संस्करण प्रथम 1963 ईस्वी
6. महाकविभवभूतिप्रणीतम् महावीरचरितम्, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1926
7. महाकविभवभूतिप्रणीतम् महावीरचरितम्, आचार्य श्रीरामचन्द्रमिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 2009
8. महाकविभवभूतिविरचितम् मालतीमाधवम्, डॉ. गंगासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 2002
9. मानवमूल्यपरक शब्दावली का विश्वकोश - मैनी, सरूप एण्ड सन्स, दिल्ली - 2005